RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 4 सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

लोक कला की विभिन्न विधाएँ

उमेश कुमार
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

लोककला का इतिहास मानव सभ्यता जितना ही प्राचीन है। प्रारंभिक मानव ने प्राकृतिक परिवेश के अनुरूप अपने जीवन को व्यवस्थित किया और उसी के अनुरूप कला का आरंभ हुआ। मानव ने अपनी जीवन आवश्यकताओं के अनुसार उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना सीख लिया। उसने अपने निवास स्थान के लिए गुफाओं और प्राकृतिक आश्रयों का चयन किया, जिन्हें उसने सजाने-संवारने का प्रयास किया। धीरे-धीरे उसने अपने दैनिक जीवन के लिए उपयोगी वस्तुएँ जैसे बर्तन, औजार, वस्त्र और आभूषण बनाना आरंभ किया।

मनुष्य ने अपने मनोरंजन और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न खिलौनों और साधनों का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आपदाओं और जीवन की अनिश्चितताओं से निपटने के लिए उसने देवी-देवताओं और आध्यात्मिक शक्तियों की कल्पना की। इनकी पूजा और सम्मान हेतु उसने विभिन्न प्रतीकों का निर्माण किया और उन्हें चित्रित किया। इसके लिए वह प्रकृति प्रदत्त खनिज पदार्थों जैसे गेरू, कोयला, खड़िया आदि का प्रयोग करता था। इस प्रकार, मानव का कला के प्रति संबंध उसके जीवन, विश्वास और सामाजिक जरूरतों से गहरा जुड़ा रहा।

भारत में लोकजीवन में कला की अभिव्यक्ति अलग-अलग रूपों में देखने को मिलती है। विभिन्न अवसरों और त्योहारों के समय घरों, आंगनों और भूमि को सजाने की परंपरा विकसित हुई। 'मांडना' इस दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें भूमि पर रंगीन मिट्टी या प्राकृतिक रंगों से सुंदर पैटर्न बनाकर सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर सौंदर्य और शुभकामना व्यक्त की जाती है। इस कला में प्रतीकात्मकता, सौंदर्य और सामाजिक भावनाओं का समन्वय मिलता है, जो मानव जीवन की सांस्कृतिक गहराई को दर्शाता है।

भारत में लोककला की अभिव्यक्ति प्राचीन काल से ही जीवन का अभिन्न अंग रही है। गेरू और खड़िया के प्राकृतिक रंगों का उपयोग करके महिलाएँ सदियों से दीवारों, आंगनों और जमीन पर विभिन्न आकृतियाँ रचती आई हैं। ये आकृतियाँ न केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति हैं, बल्कि पर्वों और धार्मिक अवसरों के महत्व को भी प्रतिविम्बित करती हैं। भारतीय जनमानस की भावनाओं और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को व्यक्त करने वाली ये रचनाएँ क्षेत्र विशेष के अनुसार अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं। मध्यप्रदेश में इसे 'मांडना' कहा जाता है। मांडना अपनी सहजता और प्राकृतिकता के कारण प्रदेश की संस्कृतियों का अनुपम सौंदर्य सामने लाती है।

शचीरानी गुर्टू के अनुसार, 'लोककला अकृत्रिम होती है, इसीलिए उसका रूप इतना सरल और

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

हृदयग्राही है कि भले ही वह जीवन के गूढ़तम विश्लेषण को व्यक्त न कर सके, परंतु निष्ठा की अतल गहराई, अव्यवस्थित रेखाओं में भी सजीव चित्र उपस्थित कर देती है। इसके सौंदर्य में झांकने के लिए तर्क-वितर्क नहीं, केवल हृदय की संवेदनशीलता चाहिए।'

मांडना के अंतर्गत घर, आंगन, दीवार और जमीन के खुले वातावरण में किसी पर्व या खुशी के अवसर पर खड़िया और गेरू का प्रयोग करके बनाई जाने वाली सभी आकृतियों को शामिल किया जाता है। भारत में धार्मिक और सामाजिक त्यौहारों की प्रचुरता के कारण प्रत्येक पर्व पर ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में मकानों को साफ करके मांडना बनाने की परंपरा रही है। ग्रामीण अंचलों में तथा शहरों के कच्चे मकानों की दीवारों को विशेष प्रकार से लीपकर और रंगकर मांडना तैयार किया जाता है।

मांडने प्राय: गोलाकार या कोणीय रूपों में बनाये जाते हैं और इन्हें बनाने की प्रक्रिया सरल होने के कारण छोटी उम्र की कन्याएँ और बड़ी महिलाएँ भी इसे आसानी से कर सकती हैं। प्रारंभ में प्राथमिक आकृति को गेरू की रेखाओं से अंकित किया जाता है और तत्पश्चात सफेद खड़िया मिट्टी से उसे भरा जाता है। इस प्रारंभिक रेखा को चारों ओर से अन्य आकृतियों और रेखाओं से सजाया जाता है। इस कार्य में परिवार की छोटी-बड़ी सभी महिलाएँ और कन्याएँ सहभागिता करती हैं। इस प्रकार मांडना केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि कला शिक्षण का साधन भी बन जाता है, जिसे सहजता और सामाजिक सहभागिता के माध्यम से अगली पीढ़ी तक पहुँचाया जाता है।

मांडनों में केवल आलेखन नहीं होता, बल्कि प्रतीकों के आधार पर आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं। विभिन्न धार्मिक और सामाजिक अवसरों पर मांडनों में विशिष्ट आकार और प्रतीक रचे जाते हैं। उदाहरण के लिए, दीपावली पर्व पर फूल चौक (आठ पंखुड़ियों वाला फूल), बारह का बाजार (चौकोर आकार का पैटर्न), तात्यें की जोड़ जैसी अनेक आकृतियाँ बनाई जाती हैं। मांडने बनाने की प्रक्रिया में खड़िया और गेरू का उपयोग किया जाता है। इन्हें पानी और गोंद के घोल में मिलाकर कपड़े की चिंदी या रूई के फोहे के माध्यम से अंगुलियों में लेकर अंगूठे से दबाकर फर्श पर मुख्य रेखाएँ खींची जाती हैं। प्रारंभ में गेरू से आकृति की रूपरेखा बनाई जाती है और तत्पश्चात खड़िया से उसे भरा जाता है।

मांडनों में प्रयुक्त समानांतर और वक्र रेखाओं ने आधुनिक चित्रकला में ज्यामितिक आलेखन शैली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मांडने में जिन रेखाओं का प्रयोग होता है, वे रूढ़िगत होती हैं और इनका प्रत्यक्ष संबंध धार्मिक आधार, देवी-देवताओं और उनके प्रतीकों से होता है। धार्मिक देवी-देवताओं और प्रतीकों की आकृतियाँ सरल और स्पष्ट रूप में बनाई जाती हैं ताकि उनका अर्थ सहज रूप से समझा जा सके।

चार रेखाओं के सहयोग से बनाए जाने वाले एक विशेष आकार को 'स्वास्तिक' कहा जाता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, जहाँ भी कोई शुभ कार्य किया जाता है, वहाँ हिंदू धर्म के अनुयायी इस प्रतीक को अंकित करना नहीं भूलते। स्वास्तिक बनाकर किसी कार्य की शुरुआत करने की यह परंपरा पूरे देश में प्रचलित है। हिंदू धर्मावलंबी इस प्रतीक का उपयोग न केवल पूजा और यज्ञ में, बल्कि दुकान, गृह पूजन, विवाह, बाल-जन्म उत्सव, दूर्गा पूजा, तुलसी पूजन, और अन्य अनेक धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों पर भी करते आए हैं। स्वास्तिक की आकृति मांडने के रूप में आंगनों में भी खड़िया और गेरू रंग से बनाई

जाती है, जिससे न केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व की भी पुष्टि होती है।

आंगन को सजाना भारतीय संस्कृति में शुभ भावनाओं और गृह-लक्ष्मी की उपस्थिति का प्रतीक माना जाता है। गृहिणियाँ प्रत्येक शुभ अवसर पर आंगन और घर को मांडनों से सजाकर अपने परिवार की समृद्धि, सुख और मंगल की कामना करती हैं। मांडनों में चौक मांडना विशेष महत्व रखता है। चौक को केवल एक ही प्रकार की आकृति से भरना आवश्यक नहीं होता, बल्कि इसे बनाने में पर्व और अवसर की प्रधानता होती है। इस अनुसार परंपरागत आकारों और प्रतीकों को आधार बनाकर महिलाएँ इसे सजाती हैं।

मांडने के चौक विभिन्न विषयों के आधार पर बनाए जाते हैं, जैसे सातिये का चौक, चार सातियों का चौक, नारियल का चौक, संक्रांति का कुण्डा, पगल्यों का चौक, पाँच बावड़ी का चौक आदि। चौक प्राय: आंगन के मध्य भाग में बनाया जाता है और यह पूरे आंगन की सजावट का केंद्र बिंदु होता है।

दीपावली पर्व पर मांडने बनाना विशेष रूप से प्रचलित है। इस अवसर पर स्त्रियाँ घर और आंगन की दीवारों और फर्श को लीपकर सजाती हैं। यदि फर्श पक्का है तो उसे धोकर खड़िया और गेरू से चौक और अन्य आकृतियाँ भरी जाती हैं। दरवाजों पर लक्ष्मीजी के पगलियों के प्रतीक बनाए जाते हैं, जबकि कमरों में चौपड़, दीवी फूल, भाँत, आठ-पंखुड़ी वाला फूल, स्वास्तिक और दीपक जैसी आकृतियाँ सजाई जाती हैं। विवाह के अवसर पर, जब बहू पहली बार गृह प्रवेश करती है, तो घर के मुख्य द्वार से कमरे तक सात घेवरनुमा आकृति बनाई जाती है और बहू के पैरों में कंकुसे भरे जाते हैं, जिसे बहू मांडते हुए पार करती है।

पाँच बावड़ी का चौक शुभ पर्वों पर विशेष रूप से बनाया जाता है। दीपावली पर इसे पगलियों के रूप में सजाना प्रथा है। 'पगलिया' का अर्थ पग या पैर होता है और इसे बनाने की प्रथा सम्पूर्ण मालवा क्षेत्र में विद्यमान है। दीपावली पर पगलिया बनाना घर में लक्ष्मीजी के आगमन का प्रतीक माना जाता है।

उपर्युक्त मांडनों में लोककला का विशेष पुट विद्यमान है। इसकी कोई लिखित पोथी नहीं होती, किन्तु यह परंपरागत ज्ञान और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण के माध्यम से संरक्षित रहता है। प्रत्येक मांडने में न केवल सौंदर्य और सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति होती है, बल्कि यह धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के गहरे अर्थों का प्रतीक भी है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मानव के प्राचीन समय से ही कला का विकास हुआ, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर जीवन आवश्यकताओं की पूर्ति और धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई। भारत में लोकजीवन में विभिन्न अवसरों पर घरों, आंगनों और जमीन को सजाने की परंपरा विकसित हुई। मांडना, विशेषकर मध्यप्रदेश में प्रचलित, ऐसी लोककला है जिसमें गेरू और खड़िया के रंगों से आकृतियाँ बनाई जाती हैं। इसमें प्रतीकों, रेखाओं और चौकों का प्रयोग होता है, जो धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व रखते हैं। चौक, स्वास्तिक, पगलिया आदि आकृतियाँ शुभ अवसरों, पर्वों और विवाह जैसे उत्सवों पर बनाई जाती हैं। यह कला न केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति है, बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित परंपरागत ज्ञान और सामाजिक सहभागिता का माध्यम भी है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गुप्ता, शचीरानी, लोककला और मांडना कला का अध्ययन, भोपाल: मध्यप्रदेश लोक कला परिषद, 2010*
2. *शर्मा, रामकुमार, भारतीय लोकजीवन और लोककला, दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन, 2012*
3. *वर्मा, सुनीता, भारतीय महिला और घरेलू लोककला, जयपुर: राजस्थान सांस्कृतिक संस्थान, 2015*
4. *त्रिपाठी, अजय, मांडना: पारंपरिक प्रतीक और धार्मिक अभिव्यक्ति, इंदौर: मध्यप्रदेश सांस्कृतिक अकादमी, 2013*
5. *गुर्टू, शचीरानी, लोककला: सरलता और हृदयग्राही सौंदर्य, पुणे: भारतीय कला अध्ययन केंद्र, 2008*
6. *पटेल, अनुराग, गेरू और खड़िया: पारंपरिक रंग और तकनीक, भोपाल: लोकसृजन प्रकाशन, 2011*
7. *मिश्रा, प्रीति, भारत में पर्व और मांडने की परंपरा, दिल्ली: भारतीय सांस्कृतिक शोध संस्थान, 2014*
8. *चौहान, दीपक, मांडने में प्रतीकात्मकता और धार्मिक चिन्ह, इंदौर: मध्यप्रदेश लोक कला परिषद, 2012*
9. *राठी, सुशील. स्वास्तिक और अन्य धार्मिक प्रतीक लोककला में, जयपुर: राजस्थान कला शोध केंद्र, 2010*
10. *यादव, निर्मल, दीपावली और विवाह अवसरों पर मांडना, भोपाल: मध्यप्रदेश लोक संस्कृति प्रकाशन, 2016*